एकीभाव स्तोत्र

(पद्यानुवाद- आचार्य श्री विमर्शसागर)

लगता जो एकीभाव को ही प्राप्त हो रहे,
भव-भवमेंसाथचलकेदुःखकेबीजबोरहे।
हे नाथ! कर्मबंध की है यह विशेषता,
दुष्कर है जिन्हें दूर भी करना हे देवता।।

हे जिनरवि! हो जिसके हृदय आपकी भक्ति,
होती है क्षीण घोर कर्मबन्ध की शक्ति।
फिर दूसरा सन्ताप जय कहाँ अशक्य है,
भक्ति से उसको जीतना होता अवश्य है।।1।।

जिनदेव! तत्त्वज्ञान के जो ज्ञाता ऋषि महा,
उनने सदा ज्योति-स्वरूप आपको कहा।
हो चूँकि पापतम विनाश में तुम्हीं कारण,
ज्योतिस्वरूप कहते नहीं तुमको अकारण।।

प्रभु! आप मेरे चित्त निकेतन में बस रहे,
होकर प्रकाशमान नित्य ही विलस रहे।
हे नाथ! पापतम निवास कैसे पायेगा ?
कितना भी हो समर्थ पास वो न आयेगा ।।2।।

जिसका भी आप में प्रभु! थिर चित्त हो रहा,
मुख जिसका हर्ष आँसू से अभिषिक्त हो रहा।
स्तोत्ररूपी मंत्र का लेकर जो आसरा,
करता है पूजा आपकी नित भाव से भरा।।

चिरकाल से भी जिनका फिर निवास हो प्रभो!
क्षण भर भी नहीं शान्ति सदा त्रास हो विभो!
तन रूपी बामी से निकलते रोग साँप भी,
प्रभु! आपकी भक्ति से कहाँ रहते पाप भी।।3।।

हे देव! पुण्योदय हुआ जब भव्यजनों का,
सुरलोक से तब आगमन हुआ जो आपका।
छह माह पूर्व जन्म की आई विशेषता,
सम्पूर्ण धरा पा गई कंचन सुरूपता।।

हे नाथ! ध्यान द्वार से तुमको बुला रहा,
भक्ति से अपने मन में तुम्हें ही बसा रहा।
तो नाथ! इसमें आश्चर्य की है बात क्या ?
हो आगमन से आपके तन भी सुवर्ण सा।।4।।

प्रभु! लोक में हो अद्वितीय बन्धु अकारण,
करते हो हित सभी का अहित करते निवारण।
जग के सकल पदार्थ ज्ञान में झलक रहे,
सर्वज्ञ शक्ति को न कोई कर्म ढक रहे।।

चिरकाल से फिर भक्ति का विस्तार किया है,
मन रूपी शैय्या पर तेरा अवतार किया है।
मुझसे हुये पैदा दुःखों को कैसे सहोगे,
विश्वास मुझे पूरा, उन्हें दूर करोगे।।5।।

संसार वन में बहुत काल घूमता रहा,
हे नाथ! पुण्ययोग से फिर आपको लहा।
पाकर के नयकथा की ये अमृत सी बावड़ी,
इस रूप कर रहा हूँ प्रवृत्ति घड़ी-घड़ी।।

शशि के समान और बर्फ के समान है,
इस बावड़ी के नीर का अतिशय महान है।
इसमें जो मनुज डूब के स्नान करेगा,
दुःख दावानल का क्यों नहीं अवसान करेगा।।6।।

हे नाथ! तीन लोक किये आपने पावन,
आकाश मध्य जब भी हुआ आपका गमन।
कमलों पे आप रखते हो जब भी चरण कमल,
स्वर्णिम सुगन्ध श्री निवास हों तुरत कमल।।

फिर नाथ! आप जब मेरे हृदय में बस रहे,
हर अंग-अंग से मेरा हृदय परस रहे।
है कौन सा कल्याण जो न प्राप्त करूँगा,
है कौन अकल्याण जिसे मैं न हरूँगा।।7।।

रुकता नहीं किसी से भी जो दुर्निवार है,
उस काम मद को जीता तुम्हें नमस्कार है।
करते जो दर्श आपका निज भक्ति पात्र से,
पीते हैं वचन अमृत, होने सुपात्र वे।।

फिर कर्मरूपी वन से निकलकर के नाथ! वे
हों मुक्ति सदन में प्रविष्ट सुख के साथ वे।
आधार जिस पुरुष को आपके प्रसाद का,
क्रूराकृति सम रोग शूल से विषाद क्या।।8।।

हे नाथ! मानस्तम्भ जो पत्थर का है बना,
है अन्य भी पाषाण के स्तम्भ के समा।
होता है रत्नमय भी तो क्या बात निराली,
है अन्य-अन्य रत्नों में आभा वही लाली।।

फिर करते जो मनुष्य दर्श मानस्तम्भ का,
होता है दूर कैसे रोग उनके दम्भ का।
हे नाथ! दर्श शक्ति में श्रद्धा विधान है,
प्रभु! आपकी समीपता कारण महान है।।9।।

प्रभु! आपके शरीर रूपी गिरि समीप से,
बहती मनोहारी हवा जिसके करीब से।
उस नर के अपरिमित भी रोग रूपी धूल के,
सम्बन्ध को करती है दूर नाथ! मूल से।।

फिर जिसने बुलाया हृदय कमल पे ध्यान से,
हे नाथ! बिठाया तुम्हें भक्ति विधान से।
हितहोताअलौकिकतोक्यालौकिकनहींहोगा,
कल्याण का उसको सहज सुयोग बनेगा।।10।।

भव-भव में मुझे जैसा जो दुःख प्राप्त हुआ है,
स्मरण मात्र से लगे शस्त्रों ने छुआ है।
प्रभु! आप हैं सर्वज्ञ व्यथा मेरी जानते,
सर्वेश! दयावान सभी तुमको मानते।।

आया हूँ भक्ति से भरा शरण में आपकी,
हो जाये शांति मेरे भी दुष्कर्म पाप की।
मेरे लिये तो नाथ! आप ही प्रमाण हैं,
जो चाहें जैसा चाहें आप मेरे प्राण हैं।।11।।

जो श्वान पापाचार में ही लीन रहा था,
जीवक से मृत्युबेला में उपदेश सुना था।
सुनकर के नमस्कार मंत्र देह को त्यागा,
पाया था देव सौख्य जन्म होते जो जागा।।

हे नाथ! फिर जो आपका गुणगान करेगा,
मणिमाला लेके नाम, जाप, ध्यान करेगा।
ऐसे पुरुष को इन्द्र की प्रभुता भी मिले तो
सन्देह की क्या बात? विभूति भी फले तो।।12।।

जो शुद्धज्ञान शुद्धचरित धार रहे हैं,
जो मोक्ष की अभिलाषा को स्वीकार रहे हैं।
अविनाशी सुख प्रदाता जो अनुभूति रूप है,
हे नाथ! भक्ति आपकी कुञ्जी स्वरूप है।।

निष्कांक्ष भक्ति कुंजी यदि न हो पास में,
फिर मोक्षद्वार कैसे खुले निज विकास में।
जिस द्वार पे मजबूत मोह ताला लगा हो,
कुंजी बिना कैसे खुलेगा ताला, बताओ।।13।।

हे देव! मुक्तिमार्ग यद्यपि महान है,
निश्चय से, किन्तु पाप तिमिर का वितान है।
दुःख रूप गहन गर्त ऊँच-नीच थान हो,
उस मार्ग पे चलते हुए मुश्किल में जान हो।।

जीवादि तत्त्वज्ञान को प्रकाशने वाला,
हे नाथ! दिव्यध्वनि रूपी दीप निराला।
शिवपथ पे यदि आगे-आगे साथ न रहे,
तो कौन पुरुष पथ पे गमन सुख से कर सके।।14।।

है जो असीम आत्मज्ञानरूपी खजाना,
जो दृष्टा को आनंद का कारण है बखाना।
वह कर्मरूप पृथ्वी के पटल से ढका है,
वह अन्य जनों के लिये दुर्लभ ही कहा है।।

प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग बन्ध की,
पृथ्वी को खोदने के लिये है जो कुदाली।
हे नाथ! वह है आपकी भक्ति व स्तुति,
जो भव्य करेगा वो शीघ्र पायेगा मुक्ति।।15।।

नय रूप हिमालय से जो उत्पन्न हुई है,
जो मोक्ष-समुन्दर में जा सम्पन्न हुई है।
वह भक्तिगंगा नाथ! जो हृदय में बस रही,
वह आप चरणकमल के कारण विलस रही।।

श्रद्धा के वशीभूत हो स्नान किया है,
कल्मष जो धुल गया विशुद्ध मन ये हुआ है।
हे देव! न सन्देह का स्थान रहा है,
भक्ति में जब से मन ये मेरा मग्न हुआ है।।16।।

अविनाशी सौख्य हो गया जिनके लिये प्रगट,
हे देव! सतत् ध्यान में हूँ आपके निकट।
मैं हूँ वही, जो आप हैं ऐसी हुई मति,
होकर मैं निर्विकल्प करूँ निश्चय स्तुति।।

यद्यपि ये बुद्धि झूठ है एकांत नहीं है,
तो भी अचल सुतृप्ति को विश्रान्ति यहीं है।
प्रभु! आपके प्रसाद से सदोष आत्मा,
इच्छित फलों को पा, बनें निर्दोष आत्मा।।17।।

प्रभु! आपका दिव्यध्वनि रूपी ये समुन्दर,
उठती है जिसमें सप्तभंग समकिती लहर।
जो मिथ्यावाद रूपी महामल हटा रहा,
सम्पूर्ण जगत जिसमें सुरक्षा को पा रहा।।

मनरूपी सुमेरु को बनाकर के मथानी,
दिव्यध्वनि रूपी समुद्र मथते सुज्ञानी।
निज ज्ञानरूपी अमृत का पान कर रहे,
संतुष्ट हो चिरकाल वे अज्ञान हर रहे।।18।।

होता स्वभाव से जो असुन्दर कुरूप सा,
आभूषणों से चाहता वो ही सुरूपता।
शत्रु के द्वारा जिसको जीतना भी शक्य है,
वो है कुदेव शस्त्र भी रखता अवश्य है।।

हे देव! सहज आप हो सर्वांग से सुन्दर,
शत्रु के लिये आप ही अजेय हो भूपर।
तन पे न रखते आप कभी फूल या भूषण,
फिर वस्त्र अस्त्र-शस्त्र से भी क्या है प्रयोजन।।19।।

इन्द्रादि करते सेवा भलीभाँति आपकी,
हे नाथ! प्रशंसा है क्या उससे भी आपकी।
प्रभु! आपकी कृपा से इन्द्र भव को नाशता,
उससे तो उसी इन्द्र की होती श्लाघ्यता।।

हे नाथ! आप भवसमुद्र तारने वाले,
मुक्तिवधु के स्वामी सिद्धि धारने वाले।
तिहुँलोक अनुग्रह-निग्रह में समर्थ हो,
प्रभु! आपकी स्तुति ये प्रशंसा के अर्थ हो।।20।।

प्रभु! आपके अनुपम वचन पर के समान न,
प्रभु! आप कभी पर पदार्थ के समान न।
इस हेतु से स्तुति वचन की कैसी संगति,
स्पष्ट दिखती मिथ्यावचन की विसंगति।।

स्तुति वचन विसंगति फिर भी विशिष्ट है,
भक्ति पीयूष से सदा ही क्योंकि पुष्ट है।
स्तुति वचन ही जीवों का संसार खोते हैं,
इच्छित फलों को देने कल्पवृक्ष होते हैं।।21।।

हे देव! आप क्रोध-भाव धारते नहीं,
प्रभु! आप प्रीतिभाव को उचारते नहीं।
निरपेक्ष चित्त आपका निश्चय महान है,
अत्यन्त उपेक्षा से व्याप्त पूर्णज्ञान है।।

तो भी ये जगत् आपकी आज्ञा अधीन है,
करने को दूर शत्रुता सन्निधि सुचीन है।
हे जगतिलक! प्रभुत्व ऐसा अन्य कहाँ है,
होगा अगर तो आपका सानिध्य वहाँ है।।22।।

हे देव! स्वर्ग अप्सरायें गातीं कीर्ति,
सर्वज्ञ देव! आप पूर्णज्ञान-मूर्ति।
जो भव्य पुरुष आपकी भक्ति में हो अटल
उसका कभी शिवमार्ग भी होता नहीं कुटिल।।

सिद्धांत-तत्त्व ग्रंथ का होता है पारखी,
हिरदय में उस पुरुष के प्रगट होती भारती।
आती कभी न मूर्च्छा सिद्धान्त ग्रंथ में,
करता जो शीघ्र स्तुति इस मोक्षपंथ में।।23।।

हे देव! आप हो अनंत-सौख्य के स्वामी,
हे देव! आप हो अनंत-वीर्य के स्वामी।
हे देव! आप हो अनंत-ज्ञान के स्वामी,
हे देव! आप हो अनंत-दर्श के स्वामी।।

जो भव्य नियतकाल मन से आपको ध्याता,
आदर के साथ स्तुति गुण आपके गाता।
निश्चय से पुण्यवान वो शिवमार्ग को पाता,
तीर्थेश जैसे पञ्चकल्याणक को मनाता।।24।।

देवेन्द्र भक्ति-भाव से अभिभूत हुए हैं,
जिनचरण पूजने को नम्रीभूत हुए हैं।
हैं सूक्ष्मज्ञान चक्षु ऐसे योगीराज भी,
सक्षम न प्रभु! आपके गुणगान में कभी।।

हा! मूर्ख हम जो स्तुति उपहार कर रहे,
छल से अहो! सम्मान का विस्तार कर रहे।
निश्चय यही सम्मान तो शिव कल्पवृक्ष है,
हम चाहते निज सौख्य जो होता प्रत्यक्ष है।।25।।

जो व्याकरण ज्ञाता वो हीन वादिराज से,
जो श्रेष्ठ नैयायिक वो हीन वादिराज से।
जो हैं प्रसिद्ध कवि वो हीन वादिराज से,
जो साधु पुरुष हैं वो हीन वादिराज से।।26।।

एकीभाव स्तोत्र का, करता जो नित पाठ।
वो ''विमर्श'' बनता सहज, मोक्षमहल सम्राट।।

।। इति श्री एकीभाव स्तोत्र पद्यानुवाद ।।